भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2024

ISBN : 978 - 81 - 89435 - 66 - 0

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

डॉ. सुनीता जांगिड़
विभागाध्यक्ष शिक्षा
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

शिक्षा मानव जीवन की वह अनिवार्य प्रक्रिया है जो व्यक्ति के संपूर्ण विकास और समाज की प्रगतिशीलता दोनों में सहायक होती है। यह केवल ज्ञानार्जन का साधन नहीं है, बल्कि यह व्यक्तित्व निर्माण, नैतिक चेतना का विकास, सामाजिक उत्तरदायित्व और संस्कृति के संवर्धन का प्रमुख माध्यम भी है। शिक्षा का स्वरूप, उद्देश्य और पद्धति दर्शन और समाजशास्त्र के आधार पर निर्धारित होते हैं। दर्शन शिक्षा को दिशा प्रदान करता है और यह निर्धारित करता है कि शिक्षा का अंतिम लक्ष्य क्या होना चाहिए। समाजशास्त्र शिक्षा को व्यवहारिक रूप प्रदान करता है, यह सुनिश्चित करता है कि शिक्षा समाज की आवश्यकताओं और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप हो। यदि शिक्षा में दर्शन का आधार न हो तो यह दिशाहीन हो जाती है, और समाजशास्त्र के बिना शिक्षा केवल सैद्धांतिक प्रक्रिया रह जाती है।

दार्शनिक आधार

"Education is the dynamic side of Philosophy" जॉन ड्यूई का यह कथन शिक्षा और दर्शन के अतुलनीय संबंध को दर्शाता है। भारतीय दृष्टिकोण में भी शिक्षा और दर्शन का यह संबंध अत्यंत गहन है। उपनिषदों में शिक्षा को मुक्ति और आत्म–साक्षात्कार का साधन बताया गया है, जिसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है: 'स विद्यायाऽ विमुक्तये।' अर्थात् शिक्षा वही है जो व्यक्ति को बंधनों से मुक्ति दिलाए और उसकी आत्मा को जागृत करे।

शिक्षा शब्द संस्कृत धातु 'शिक्ष्' से बना है, जिसका अर्थ है सीखना, जानना और सीखाना। पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य में 'Education' शब्द लैटिन शब्द 'Educare' से लिया गया है, जिसका अर्थ है भीतर निहित शक्तियों को बाहर लाना। इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक अर्थ है व्यक्ति के भीतर विद्यमान मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक क्षमताओं का विकास करना और उन्हें समाजोपयोगी दिशा प्रदान करना। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को व्यक्ति में निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति कहा, जबकि महात्मा गांधी ने शिक्षा

को शरीर, मन और आत्मा के संतुलित विकास का माध्यम बताया। टैगोर के अनुसार शिक्षा वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति को जीवन और विश्व चेतना से जोड़ती है। इन दृष्टिकोणों से स्पष्ट है कि शिक्षा केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्तित्व और समाज के लिए जिम्मेदारी का निर्माण भी करती है।

दर्शन और शिक्षा का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। दर्शन जीवन, ब्रह्मांड, सत्य और ज्ञान के अंतिम स्वरूप की खोज करता है, जबकि शिक्षा उसी दर्शन के आदर्शों को व्यवहार में उतारने का माध्यम है। दर्शन शिक्षा को उद्देश्य और दिशा प्रदान करता है, जबकि शिक्षा दर्शन को व्यवहारिक और गतिशील रूप देती है। यदि दर्शन शिक्षा को स्थिर आदर्श देता है, तो शिक्षा उसे जीवन में लागू करने का माध्यम है। भारतीय परंपरा में शिक्षा सदैव दार्शनिक आधार पर आधारित रही है। गुरुकुलों में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं था, बल्कि नैतिकता, चरित्र निर्माण और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना भी था। महर्षि दयानंद, विवेकानंद, गांधी और टैगोर जैसे विचारकों ने शिक्षा को जीवन और दर्शन का अभिन्न अंग माना।

शिक्षा का दार्शनिक आधार तीन प्रमुख मीमांसाओं पर आधारित है। सत्ता मीमांसा जीवन और वास्तविकता के स्वरूप का अध्ययन करती है और यह शिक्षा के उद्देश्य को तय करती है। यदि वास्तविकता आत्मा और परमात्मा के रूप में मानी जाए तो शिक्षा का उद्देश्य आत्मा का विकास और आत्म-साक्षात्कार होगा, जबकि यदि वास्तविकता भौतिक वस्तुएँ हैं तो शिक्षा का उद्देश्य भौतिक और अनुभवजन्य ज्ञान होगा। ज्ञानमीमांसा यह निर्धारित करती है कि ज्ञान क्या है, इसे कैसे प्राप्त किया जाए और इसका प्रयोग कैसे किया जाए। भारतीय परंपरा में ज्ञान प्राप्ति के साधन श्रवण, मनन और निदिध्यासन हैं, और शिक्षा केवल ज्ञान संचयन तक सीमित नहीं रहकर ज्ञान का आत्मसात कराती है। पाश्चात्य दृष्टिकोण में अनुभव और प्रयोग के माध्यम से शिक्षा जीवन की समस्याओं का समाधान प्रदान करती है। मूल्यमीमांसा शिक्षा के नैतिक, सामाजिक और सौंदर्य मूल्यों का अध्ययन करती है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में सत्य, अहिंसा, प्रेम, सेवा, सौंदर्यबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे गुणों का विकास करना है।

विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों ने शिक्षा के स्वरूप और उद्देश्य पर अपना प्रभाव डाला है। आदर्शवाद शिक्षा को चरित्र निर्माण, आत्मा के विकास और नैतिकता के साधन के रूप में देखता है, जबकि यथार्थवाद शिक्षा को वस्तुगत ज्ञान, अनुभव और वैज्ञानिक दृष्टि का माध्यम मानता है। प्राकृतिकवाद बालक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों और रुचियों के अनुसार शिक्षा देने का समर्थन करता है, और प्रयोजनवाद शिक्षा को जीवन की समस्याओं का समाधान बनाने की प्रक्रिया मानता है। विवेकवाद शिक्षा में

तार्किक चिंतन और स्वतंत्र निर्णय को प्राथमिकता देता है। प्लेटो और अरस्तू ने शिक्षा को आदर्श नागरिक और समाजोपयोगी व्यक्तित्व के निर्माण का माध्यम माना। जॉन ड्यूई ने शिक्षा को केवल जीवन की तैयारी नहीं, बल्कि जीवन के समान माना। स्वामी विवेकानंद, गांधी, टैगोर और महर्षि दयानंद ने शिक्षा को व्यक्ति और समाज के सर्वांगीण विकास का साधन कहा।

समाजशास्त्रीय आधार

समाजशास्त्रीय आधार शिक्षा को समाज की आवश्यकताओं, नियमों, मूल्यों और परंपराओं से जोड़ता है। शिक्षा समाज की संस्कृति और संरचना को अगली पीढ़ी तक पहुँचाती है और समाज में अनुशासन, नैतिकता और सामाजिक चेतना का विकास करती है। यह शिक्षा के माध्यम से सामाजिक गतिशीलता, समानता और सुधार को सुनिश्चित करती है। शिक्षा सामाजिक एकता का माध्यम भी है, जो विभिन्न जातियों, वगोर्ं, धमोर्ं और भाषाई समूहों को एक साझा पहचान और सहयोग के आधार पर जोड़ती है। भारतीय समाज में शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत विकास नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक विकास भी रहा है। वेद, उपनिषद और स्मृति ग्रंथों में शिक्षा को नैतिक, धार्मिक और सामाजिक उत्तरदायित्व का साधन माना गया है। गुरुकुल प्रणाली ने शिक्षा के माध्यम से अनुशासन, नैतिकता और सहिष्णुता का विकास किया। आधुनिक भारत में शिक्षा ने सामाजिक सुधारों को गति दी, जैसे स्त्री शिक्षा, दलित सशक्तिकरण और सामाजिक समानता।

शिक्षा और समाज का समन्वय यह सुनिश्चित करता है कि शिक्षा केवल व्यक्तिगत विकास तक सीमित न रहे। दर्शन शिक्षा को आदर्श और दिशा देता है, जबकि समाज उसे व्यवहारिकता और समाजोपयोगिता प्रदान करता है। स्कूल और कॉलेज का पाठ्यक्रम केवल ज्ञान नहीं देता, बल्कि नागरिक चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक मूल्यों का विकास करता है। नई शिक्षा नीति (NEP 2020) में यह स्पष्ट है कि शिक्षा का उद्देश्य समाजोपयोगी नागरिक और नैतिक व्यक्ति तैयार करना है। शिक्षा समाज का दर्पण है और समाज शिक्षा का संवाहक। दोनों का संतुलन ही पूर्ण शिक्षा को जन्म देता है।

शिक्षा का समन्वय, आधुनिक प्रभाव

शिक्षा का उद्देश्य और स्वरूप तभी पूर्णता प्राप्त करता है जब इसे दाशर्निक और समाजशास्त्रीय दोनों आधारों से समझा और लागू किया जाए। दार्शनिक आधार शिक्षा को दिशा, आदर्श और मूल्य प्रदान करता है, जबकि समाजशास्त्रीय आधार इसे व्यवहारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप देता है। इस समन्वय के माध्यम से शिक्षा न केवल व्यक्तित्व का निर्माण करती है, बल्कि समाज के सतत विकास और सुधार का

भी मार्ग प्रशस्त करती है।

भारतीय दृष्टिकोण में शिक्षा का समन्वय इस प्रकार स्पष्ट होता है। उपनिषदों, वेदों और स्मृति ग्रंथों में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक जिम्मेदारी के विकास के रूप में परिलक्षित होता है। गुरुकुल प्रणाली में शिक्षक केवल ज्ञाता नहीं, बल्कि चरित्र और आचार का आदर्श माना जाता था। महर्षि दयानंद, स्वामी विवेकानंद, गांधी और टैगोर ने शिक्षा को जीवन का अभिन्न अंग और समाज के उत्थान का साधन माना। उन्होंने शिक्षा को व्यक्ति के भीतर निहित क्षमताओं और गुणों के विकास के साथ-साथ सामाजिक जिम्मेदारी और नैतिकता के संवधज़्न का माध्यम बताया।

पाश्चात्य दृष्टिकोण में भी शिक्षा का यह समन्वय स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्लेटो और अरस्तू ने शिक्षा को आदर्श नागरिक और समाजोपयोगी व्यक्तित्व के निर्माण का माध्यम माना। जॉन ड्यूई ने शिक्षा को अनुभव और क्रिया के माध्यम से जीवन के लिए आवश्यक कौशल और निणज़्य क्षमता विकसित करने की प्रक्रिया बताया। इन विचारकों ने शिक्षा को केवल ज्ञान का संचयन नहीं, बल्कि जीवन और समाज से जोड़ने वाली प्रक्रिया माना।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से शिक्षा समाज की संस्कृति, मूल्यों और परंपराओं को अगली पीढ़ी तक पहुँचाती है। यह समाज में अनुशासन, नैतिकता, सामाजिक चेतना और सहयोग की भावना का विकास करती है। शिक्षा के माध्यम से सामाजिक गतिशीलता और समानता संभव होती है, और समाज में सुधार और परिवर्तन की प्रक्रिया को गति मिलती है। भारत में आधुनिक शिक्षा ने सामाजिक सुधारों में विशेष भूमिका निभाई है। स्त्री शिक्षा, दलित सशक्तिकरण, समान अवसर और लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रचार इसी शिक्षा के माध्यम से हुआ है। नई शिक्षा नीति (NEP 2020) में भी शिक्षा का उद्देश्य समाजोपयोगी नागरिक और नैतिक व्यक्ति तैयार करना बताया गया है।

समन्वित शिक्षा के माध्यम से दार्शनिक आदर्श और समाजशास्त्रीय वास्तविकताएँ एक-दूसरे के पूरक बन जाती हैं। दार्शनिक दृष्टिकोण शिक्षा को दिशा, मूल्य और उद्देश्य प्रदान करता है, जबकि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण इसे व्यवहारिक, व्यावहारिक और समाजोपयोगी बनाता है। यह समन्वय शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच सशक्त संबंध विकसित करता है, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों को जीवनोपयोगी बनाता है, और समाज में नैतिक और बौद्धिक चेतना का संवर्धन करता है।

आज के युग में शिक्षा केवल ज्ञान का साधन नहीं, बल्कि वैश्विक नागरिक, वैज्ञानिक दृष्टि और नैतिक मूल्यों का विकास करने वाली प्रक्रिया बन गई है। तकनीकी और डिजिटल शिक्षा ने ज्ञानार्जन के साधनों को विस्तृत किया है, लेकिन इसके मूल

उद्देश्य में दार्शनिक दिशा और समाजोपयोगिता अभी भी प्रधान हैं। शिक्षा का समग्र विकास तभी संभव है जब यह व्यक्ति और समाज दोनों की आवश्यकताओं को संतुलित रूप में पूरा करे।

निष्कर्षत: शिक्षा और दर्शन, शिक्षा और समाज के बीच का समन्वय ही उस पूर्ण शिक्षा का आधार है, जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास और समाज के स्थायित्व तथा सुधार का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा केवल ज्ञान और कौशल का संचयन नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण, नैतिक विकास, सामाजिक उत्तरदायित्व और सांस्कृतिक संवर्धन का माध्यम है। भारतीय और पाश्चात्य दार्शनिक दृष्टिकोण इस समन्वय को स्पष्ट रूप से दशातज़े हैं। शिक्षा समाज का दर्पण है और समाज शिक्षा का संवाहक। दोनों का संतुलित समन्वय ही ऐसे नागरिक और समाज का निर्माण करता है जो ज्ञान, नैतिकता और सेवा भावना से पूर्ण हो।

पाश्चात्य दर्शन और शिक्षा

पाश्चात्य दर्शन ने शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्य और विधि पर गहन विचार किया है। यहाँ प्रमुख दृष्टिकोण इस प्रकार हैं:

प्लेटो (427–347 ई.पू.)

प्लेटो ने शिक्षा को आत्मा के विकास और आदर्श राज्य के निर्माण का आधार माना। उनके अनुसार शिक्षा केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि आत्मा की जागृति और नैतिक मूल्य का विकास है। 'गुप्तगृह' (Allegory of the Cave) में प्लेटो ने यह स्पष्ट किया कि शिक्षा अज्ञानता से प्रकाश की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया है। उन्होंने शिक्षक को मार्गदर्शक और छात्र को सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार माना।

आदर्शवाद :-

* प्लेटो के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य सत्य, नैतिकता और आदर्श रूप की प्राप्ति है।

* वास्तविकता की समझ शिक्षा के माध्यम से ही संभव है।

* शिक्षा केवल सूचना देने का साधन नहीं, बल्कि मन और आत्मा के विकास का माध्यम है।

ज्ञान और नैतिकता का विकास :-

* प्लेटो ने शिक्षा को सही दृष्टि और नैतिक मूल्य विकसित करने का माध्यम माना।

* छात्रों को आदर्श गुणों जैसे न्याय, साहस, संयम और विवेक से परिपूर्ण बनाना शिक्षा का उद्देश्य था।

राज्य और शिक्षा का संबंध :-

* प्लेटो ने शिक्षा को आदर्श राज्य के निर्माण का आधार माना।

* उन्होंने माना कि राजा-शिक्षक वही हो सकता है जिसने शिक्षा के माध्यम से ज्ञान और नैतिकता दोनों प्राप्त किए हों।

पाठ्यक्रम :- प्लेटो का पाठ्यक्रम स्तरबद्ध और चरणबद्ध था। उन्होंने शिक्षा को बच्चों से लेकर युवाओं और राज्यपाल बनने तक के विभिन्न चरणों में विभाजित किया:

(1) प्रारंभिक शिक्षा :- उद्देश्य: नैतिक और शारीरिक विकास। विषय: संगीत, कविता, शारीरिक व्यायाम। परिणाम: भावनात्मक संतुलन, अनुशासन और सौंदर्यबोध।

(2) माध्यमिक शिक्षा :- उद्देश्य: तार्किक सोच और बौद्धिक विकास। विषय: गणित, ज्यामिति, गणितीय तर्क और तर्कशास्त्र। परिणाम: सोचने और विश्लेषण करने की क्षमता विकसित करना।

(3) उच्च शिक्षा :- उद्देश्य: राज्य संचालन और दार्शनिक ज्ञान। विषय: दर्शन, न्यायशास्त्र, राजनीति और नैतिक शिक्षा। परिणाम: योग्य नागरिक और भविष्य के राज्यपाल तैयार करना।

शिक्षण पद्धतियाँ :- प्लेटो की शिक्षण पद्धति में सक्रिय संवाद और प्रश्नोत्तर का विशेष महत्व था। प्रमुख पद्धतियाँ इस प्रकार हैं:

(1) संवाद पद्धति :-

* शिक्षक और छात्र के बीच संवाद और प्रश्न-उत्तर आधारित शिक्षा।

* उद्देश्य: असत्य को खारिज करके सत्य की खोज करना।

* उदाहरण : शिक्षक प्रश्न पूछता है, छात्र विचार करता है और उत्तर खोजता है।

(2) तार्किक चर्चा :-

* विषयों को तर्क और विश्लेषण के माध्यम से समझाना।

* छात्रों को निष्कर्ष तक पहुँचाने की प्रक्रिया।

(3) अवलोकन और अनुकरण :-

* नैतिक और व्यवहारिक शिक्षा के लिए आदर्श व्यक्तियों और घटनाओं का अवलोकन।

* छात्रों को सही आचरण और आदर्श सीखने की प्रेरणा देना।

(4) व्यावहारिक प्रशिक्षण :-

* शारीरिक और सामूहिक खेलों के माध्यम से अनुशासन और सहयोग की

भावना विकसित करना।

* राज्य संचालन और नेतृत्व के लिए व्यावहारिक अनुभव।

अरस्तू (384-322 ई.पू.)

अरस्तू ने शिक्षा को राज्य और समाज के उद्देश्य से जोड़ा। उनके अनुसार शिक्षा का लक्ष्य केवल व्यक्तिगत बुद्धि का विकास नहीं, बल्कि सक्षम और नैतिक नागरिक तैयार करना है। उन्होंने शिक्षा को तीन भागों में बाँटा - बौद्धिक शिक्षा (Intellectual), नैतिक शिक्षा (Moral) और शारीरिक शिक्षा (Physical), ताकि व्यक्ति संतुलित रूप से विकसित हो।

पाठ्यक्रम :-

अरस्तु का पाठ्यक्रम व्यावहारिक जीवन और राज्य सेवा के अनुसार व्यवस्थित था।

(1) प्रारंभिक शिक्षा :- उद्देश्य: नैतिक शिक्षा और सामाजिक व्यवहार। विषय: कहानी, नैतिक कहानियाँ, सरल खेल और अभ्यास।

(2) माध्यमिक शिक्षा :- उद्देश्य: तार्किक और बौद्धिक कौशल। विषय: गणित, विज्ञान, भाषा, संगीत और नैतिक शिक्षा।

(3) उच्च शिक्षा :- उद्देश्य: राज्य संचालन और व्यावहारिक ज्ञान। विषय: राजनीति, तर्कशास्त्र, दर्शन, नैतिकता और नेतृत्व।

(4) व्यावहारिक और नैतिक प्रशिक्षण :- खेल, सैन्य प्रशिक्षण और सामाजिक गतिविधियों के माध्यम से शारीरिक और नैतिक विकास।

शिक्षण पद्धतियाँ :-

(1) अनुभव और प्रयोग :- अरस्तू का मानना था कि छात्र सीखने के लिए सक्रिय रूप से अनुभव और प्रयोग करें। उनके अनुसार शिक्षा केवल शास्त्रों तक सीमित नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन में लागू होनी चाहिए।

(2) तर्क और विश्लेषण :- छात्रों को तर्क करने, प्रश्न पूछने और विचार विमर्श करने के अवसर प्रदान करना। शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना देना नहीं, बल्कि सोचने और समझने की क्षमता विकसित करना।

(3) नैतिक आदर्श :- शिक्षक छात्रों के लिए आदर्श बने। नैतिक और सामाजिक गुणों का पालन करके छात्र प्रेरित होते हैं।

(4) संतुलित विकास :- शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक शिक्षा का संतुलित मिश्रण। शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण मानव और सक्षम नागरिक तैयार करना।

जॉन लॉक (1632-1704)

जॉन लॉक इंग्लैंड के महान दार्शनिक और शिक्षा शास्त्री थे। उन्हें अनुभववाद

का प्रवर्तक माना जाता है। लॉक ने शिक्षा को अनुभव और अभ्यास पर आधारित माना। उनका दृष्टिकोण था कि मनुष्य जन्मजात खाली (Tabula Rasa) होता है और अनुभव, शिक्षा और पर्यावरण उसके ज्ञान और नैतिकता का निर्माण करते हैं। उन्होंने बालक केंद्रित शिक्षा और आदर्श शिक्षक की भूमिका पर बल दिया। लॉक ने शिक्षा को मनुष्य के चरित्र, आदतों और बुद्धि के विकास का प्रमुख साधन माना।

पाठ्यक्रम :-

लॉक का पाठ्यक्रम बच्चों की उम्र और आवश्यकताओं के अनुसार व्यावहारिक और तार्किक रूप से व्यवस्थित था।

(1) बाल्यावस्था (उम्र 0-7) :- उद्देश्य: नैतिक आदतें, अनुशासन और सरल ज्ञान। विषय: खेल, कहानी, नैतिक शिक्षा, व्यवहारिक प्रशिक्षण।

(2) किशोरावस्था (उम्र 8-14) :- उद्देश्य: बौद्धिक और तार्किक विकास। विषय: भाषा, गणित, विज्ञान, इतिहास, व्यावहारिक जीवन कौशल।

(3) युवावस्था और उच्च शिक्षा (उम्र 15-20) :- उद्देश्य: सामाजिक जिम्मेदारी, नैतिकता और व्यावहारिक कौशल। विषय: नैतिकता, राजनीति, तकज़्शास्त्र और समाजोपयोगी ज्ञान।

शिक्षण पद्धतियाँ :-

(1) अनुभवजन्य शिक्षा :- लॉक के अनुसार बच्चे अनुभव और पर्यावरण से सीखते हैं। शिक्षक केवल मार्गदर्शक है; सीखने का मुख्य स्रोत अनुभव और निरीक्षण है।

(2) अनुशासन और आदत निर्माण :- शिक्षा का उद्देश्य बच्चों में सही आदतें और चरित्र निर्माण करना है। पुरस्कार और प्रोत्साहन का प्रयोग अनुशासन और नैतिक मूल्य सिखाने के लिए किया जाता है।

(3) व्यावहारिक गतिविधियाँ :- खेल, प्रयोग और दैनिक जीवन की गतिविधियाँ शिक्षा का हिस्सा होती हैं। इससे समस्याओं को हल करने की क्षमता विकसित होती है।

(4) भाषा और संचार पर जोर :- लॉक ने कहा कि भाषा शिक्षा का आधार है। भाषा और संचार कौशल के माध्यम से बच्चे विचार और तर्क विकसित करते हैं।

जॉन जेम्स रॉल्ट्स और समकालीन दार्शनिक

रॉल्ट्स और अन्य समकालीन विचारकों ने शिक्षा को समाजोपयोगी और नैतिक मूल्यों के विकास का माध्यम माना। रॉल्ट्स ने शिक्षा में समान अवसर और सामाजिक न्याय के महत्व को रेखांकित किया।

जॉन हेनरिख पेस्टालॉजी (1746-1827)

स्विट्जरलैंड के एक महान शिक्षक, शैक्षिक विचारक और सुधारक थे। वे आधुनिक शिक्षा पद्धतियों के प्रणेता माने जाते हैं। उनका जीवन गरीब बच्चों की शिक्षा और सामाजिक सुधार के लिए समर्पित रहा। पेस्टालॉजी ने यह मान्यता दी कि शिक्षा केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं, बल्कि मानव के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास है। उनका जन्म ज्यूरिख में हुआ और प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने मानव कल्याण के लिए शिक्षण कार्य को अपनाया। उन्होंने अपने जीवन में कई विद्यालय स्थापित किए और शिक्षा के सिद्धांतों को व्यवहार में लागू किया।

पेस्टलॉजी का शिक्षा दर्शन मस्तिष्क, हृदय और हाथ पर आधारित था। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि भावनात्मक और शारीरिक विकास भी है। उन्होंने शिक्षा को प्राकृतिक, अनुभवजन्य और जीवनोपयोगी बनाने पर बल दिया।

मुख्य सिद्धांतः

(1) स्वाभाविक शिक्षा :- बच्चों की शिक्षा उनके स्वाभाव और प्राकृतिक क्षमताओं के अनुसार होनी चाहिए। शिक्षा को जबरदस्ती नहीं, बल्कि स्वाभाविक अनुभवों और पर्यावरण के माध्यम से प्रदान किया जाना चाहिए।

(2) समग्र शिक्षा :- बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक और शारीरिक विकास सभी एक साथ होना चाहिए। छात्रों में सहानुभूति, सामाजिक समझ और नैतिक मूल्य का विकास आवश्यक है।

(3) अनुभव आधारित शिक्षा :- छात्रों को व्यावहारिक कार्यों, कृषि, कला और दैनिक गतिविधियों के माध्यम से सीखने के अवसर प्रदान करना। ज्ञान केवल पुस्तकों तक सीमित नहीं होना चाहिए।

(4) प्रेम और देखभाल के आधार पर शिक्षण :- शिक्षक को छात्रों के प्रति सहानुभूति और प्रेम होना चाहिए। शिक्षा में डर और दंड का प्रयोग कम और प्रोत्साहन, मार्गदर्शन और प्रेम का प्रयोग अधिक होना चाहिए।

पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियाँ :

पेस्टालॉजी ने पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धति को बच्चों के व्यक्तित्व और सामाजिक उपयोगिता के अनुरूप विकसित किया।

पाठ्यक्रम

* मौलिक विषय :- पढ़ाई, लेखन, गणित, भाषा।
* व्यावहारिक शिक्षा :- कृषि, घर के काम, कला, शिल्प।
* नैतिक और सामाजिक शिक्षा :- सहयोग, सहानुभूति, अनुशासन और नैतिक

मूल्य।

* शारीरिक शिक्षा :- खेल और व्यायाम।

शिक्षण पद्धति

* **अनुभव आधारित शिक्षण** :- छात्र को कार्य के माध्यम से ज्ञान सीखना।

* **सक्रिय भागीदारी** :- शिक्षक मार्गदर्शक होता है, छात्र सीखने में सक्रिय भूमिका निभाता है।

* **समूह शिक्षा** :- प्रतिस्पर्धा के बजाय सहयोग और साझा अनुभव।

* **स्वाभाविक और प्रायोगिक गतिविधियाँ** :- बाहरी वातावरण और वास्तविक जीवन की गतिविधियों के माध्यम से शिक्षा।

जॉन ड्यूवी (1859-1952)

ड्यूवी ने शिक्षा का प्रयोजनवादी दृष्टिकोण अपनाया। उनके अनुसार शिक्षा केवल ज्ञान का संचयन नहीं, बल्कि जीवन की समस्याओं को हल करने और अनुभव के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया है। ड्यूवी ने शिक्षा को लोकतांत्रिक समाज में नागरिक चेतना, आलोचनात्मक सोच और सहयोग की भावना विकसित करने का माध्यम माना।

(1) प्रगतिशील शिक्षा :- शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्र के जीवन अनुभव और सक्रिय भागीदारी के माध्यम से विकास करना। डीवी ने कहा कि शिक्षा केवल भविष्य के लिए तैयारी नहीं, बल्कि वर्तमान जीवन में समाधान और सक्रियता का माध्यम है।

(2) अनुभव आधारित शिक्षा :- डीवी के अनुसार बच्चे स्वाभाविक रूप से सीखते हैं जब उन्हें व्यावहारिक अनुभव, प्रयोग और गतिविधियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त होता है।

(3) छात्र-केंद्रित शिक्षा :- शिक्षक केवल मार्गदर्शक है, जबकि छात्र मुख्य क्रियाशील और अनुभवजन्य भूमिका निभाता है। शिक्षा को छात्रों की आवश्यकताओं, रुचियों और सामाजिक अनुभवों के अनुसार डिजाइन किया जाना चाहिए।

(4) लोकतांत्रिक मूल्य :- डीवी का मानना था कि शिक्षा में समानता, सहयोग, संवाद और सामाजिक जिम्मेदारी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

पाठ्यक्रम :- डीवी के अनुसार पाठ्यक्रम जीवनोपयोगी और अनुभवजन्य होना चाहिए।

शिक्षण पद्धतियाँ :-

(1) क्रियात्मक शिक्षा :- डीवी का मानना था कि व्यावहारिक कार्य, प्रयोग और परियोजनाएँ छात्रों को ज्ञान और कौशल दोनों प्रदान करती हैं।

(2) प्रोजेक्ट आधारित शिक्षा :- छात्र किसी विषय पर अनुसंधान और

परियोजना के माध्यम से सीखते हैं। इससे समस्या समाधान और रचनात्मक सोच विकसित होती है।

(3) संवाद और सहयोग :- शिक्षक और छात्र के बीच सक्रिय संवाद और समूह गतिविधियाँ। छात्रों को सहानुभूति, सहयोग और आलोचनात्मक दृष्टिकोण सिखाया जाता है।

(4) अनुभव और पर्यावरण आधारित शिक्षा :- शिक्षा को वास्तविक जीवन, प्रकृति और समाज से जोड़कर व्यावहारिक ज्ञान और नैतिक मूल्य विकसित करना।

पाश्चात्य दार्शनिकों ने भारतीय शिक्षा पर भी प्रभाव डाला। विशेष रूप से जॉन डयूवी और प्लेटो के विचारों ने आधुनिक स्कूल प्रणाली, प्रयोगात्मक शिक्षा, अनुभव आधारित शिक्षा और बालक-केंद्रित शिक्षा के विकास में योगदान दिया। टैगोर ने पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से प्रेरणा लेकर अपनी शिक्षा प्रणाली में सृजनात्मकता, स्वतंत्रता और प्राकृतिक अनुभव को शामिल किया। गांधी ने भी डयूवी के अनुभववाद से प्रभावित होकर साक्षरता और व्यावहारिक शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाने का प्रयास किया।

❑❑❑